रहमान शगू एवं अन्य

बनाम

जम्मू और कश्मीर राज्य

(एस. आर. दास, मुख्य न्यायाधीश; एस. के. दास, ए. के. सरकार,
के. एन. वांचू और एम. हिदायतुल्ला, न्यायाधीश)

संविधान - जम्मू और कश्मीर के शासक की विधायी क्षमता - एक अध्यादेश जारी किया गया जिसमें दुश्मन की मदद करने को एक नया अपराध बनाया गया और विशेष प्रक्रिया का पालन करते हुए विशेष न्यायाधीशों द्वारा मुकदमा चलाने का प्रावधान किया गया - क्या यह भेदभावपूर्ण है - क्या यह अध्यादेश रक्षा से संबंधित कानून था - रक्षा का अर्थ - शासक को कानून बनाने का अधिकार देने वाले कानून का निरसन - क्या अध्यादेश बना रहता है - आपातकाल की समाप्ति - क्या आपातकाल के कारण जारी किया गया अध्यादेश भी समाप्त हो जाता है - जम्मू और कश्मीर संविधान अधिनियम, सं. 1996, धारा 5 - दुश्मन एजेंट अध्यादेश, सं. 2005 (जे.के. अध्यादेश VIII/सं. 2005) - जम्मू और कश्मीर संविधान (संशोधन) अधिनियम, सं. 2005 (जे.के. XVII/सं. 2005) - जम्मू और कश्मीर सामान्य खंड अधिनियम, सं. 1977 (जे.के. XX/सं. 1977), धारा 16(बी) - भारत का संविधान, अनुच्छेद 14; भाग XVIII

जम्मू और कश्मीर संविधान अधिनियम के तहत, सभी शक्तियाँ–विधायी, कार्यकारी और न्यायिक–शासक में निहित थीं। 22 अक्टूबर, 1947 को जब राज्य भारत में शामिल हुआ, तो रक्षा, विदेश मामले और संचार से संबंधित शक्तियाँ भारत को सौंप दी गईं। संविधान अधिनियम की धारा 5 के तहत, शासक ने 'शत्रु एजेंट अध्यादेश, संवत 2005' जारी किया, जिसमें शत्रु एजेंटों और शत्रु का साथ देने वाले अन्य व्यक्तियों के मुक़दमे और सज़ा का प्रावधान था। इस अध्यादेश में अपराधों के मुक़दमे के लिए विशेष न्यायाधीशों की व्यवस्था थी और इसमें एक ऐसी प्रक्रिया निर्धारित की गई थी जो सामान्य आपराधिक न्यायालयों में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया से काफ़ी अलग थी। संविधान अधिनियम की धारा 5 को 17 नवंबर, 1951 को निरस्त कर दिया गया। अपीलकर्ताओं पर इस अध्यादेश के तहत उन अपराधों के लिए मुक़दमा चलाया गया, जिनके बारे में आरोप था कि वे 27 और 28 जून, 1957 को किए गए थे। उन्होंने ये तर्क दिए :

(i) कि यह अध्यादेश भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है; **(ii)** कि शासक के पास यह अध्यादेश जारी करने की कोई विधायी क्षमता नहीं थी, क्योंकि यह रक्षा से संबंधित विषय था; **(iii)** कि जम्मू-कश्मीर संविधान अधिनियम की धारा 5 के निरस्त हो जाने के कारण यह अध्यादेश भी समाप्त हो गया था; **(iv)** कि यह अध्यादेश निष्प्रभावी हो गया था, क्योंकि जिस आपातकालीन स्थिति के कारण इसे जारी किया गया था, वह अब समाप्त हो चुकी थी; और **(v)** कि यह अध्यादेश शून्य (अमान्य) था, क्योंकि यह भारत के संविधान के भाग XVIII में दिए गए आपातकालीन प्रावधानों के साथ असंगत था।

अभिनिर्धारित, कि यह अध्यादेश अधिकार-क्षेत्र के भीतर, वैध और लागू था। यह अध्यादेश भेदभावपूर्ण नहीं था और इसने संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं किया था। राज्य में मौजूद परिस्थितियों को देखते हुए, "शत्रु एजेंट" और "शत्रु" की सहायता करने वाले अन्य व्यक्ति–जिन पर यह अध्यादेश लागू होता था–एक उचित वर्गीकरण बनाते थे; यह वर्गीकरण एक ऐसे बोधगम्य आधार पर आधारित था जो ऐसे व्यक्तियों को दूसरों से अलग करता था, और इस आधार का अध्यादेश के उद्देश्य के साथ एक तार्किक संबंध था, जिसका उद्देश्य सरकार के तख्तापलट को रोकना था। इसके अलावा, यदि अध्यादेश ने व्यक्तियों का कोई वर्गीकरण नहीं किया, बल्कि केवल एक अपराध निर्धारित किया और उसके लिए कठोर प्रक्रिया तथा दंड का प्रावधान किया, तो इसमें किसी भी प्रकार का कोई भेदभाव नहीं था, क्योंकि अपराध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति पर समान प्रक्रिया ही लागू होती थी।

राम कृष्ण डालमिया बनाम श्री न्यायमूर्ति एस. आर. तेंडोलकर, [1959] एस.सी.आर. 279 का अनुसरण किया गया।

यह अध्यादेश रक्षा से संबंधित कोई कानून नहीं था, बल्कि यह शासक की विधायी क्षमता के दायरे में आता था। "रक्षा" नामक प्रविष्टि केवल सशस्त्र बलों से संबंधित थी–चाहे वे थल, जल या वायु में हों–तथा ऐसे बलों के गठन, उनके रखरखाव और उनके अभियानों से जुड़ी थी। यह अध्यादेश मुख्य रूप से उन कृत्यों से संबंधित था जो शत्रु की सहायता करने के इरादे से किए गए थे, यद्यपि परोक्ष रूप से इसका संबंध सशस्त्र बलों के अभियानों से भी था। सार और तत्व की दृष्टि से, यह अध्यादेश सार्वजनिक व्यवस्था, आपराधिक कानून और प्रक्रिया से संबंधित एक कानून था, न कि रक्षा से।

यद्यपि संविधान अधिनियम की धारा 5 को निरस्त कर दिया गया था, फिर भी जम्मू और कश्मीर साधारण खंड अधिनियम की धारा 6(b) द्वारा इस अध्यादेश को सुरक्षित रखा गया। धारा 6(b) ने, अन्य बातों के साथ-साथ, किसी निरस्त अधिनियम के अधीन "विधिपूर्वक किए गए किसी भी कार्य" को सुरक्षित रखा, और यह अध्यादेश संविधान अधिनियम की धारा 5 के अधीन "विधिपूर्वक किया गया एक कार्य" था।

यह अध्यादेश एक स्थायी कानून था। यह आपातकाल के कारण अस्तित्व में आया था, लेकिन उसे पारित करने का वह केवल एक अवसर मात्र था। एक स्थायी कानून होने के नाते, इसे केवल किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा निरस्त करके ही समाप्त किया जा सकता था।

भारत के संविधान के अध्याय XVIII में दिए गए आपातकालीन प्रावधानों का अध्यादेश की वैधता या अन्यथा से कोई लेना-देना नहीं था, और अध्यादेश तथा इन प्रावधानों के बीच किसी भी असंगति का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 60/1958

जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के, रिट याचिका संख्या 53/1957 में, दिनांक 19 फरवरी 1958 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील।

अपीलकर्ताओं की ओर से अधिवक्ता - आर. वी. एस. मणि।

उत्तरदाता की ओर से अधिवक्तागण - एडवोकेट-जनरल जसवंत सिंह (जम्मू और कश्मीर), जी. एस. पाठक और टी. एम. सेन।

10 सितंबर 1959, कोर्ट का फैसला सुनाया गया

वांचू, न्यायमूर्ति - यह अपील, जो जम्मू और कश्मीर के हाई कोर्ट द्वारा भारत के संविधान (जिसे आगे 'संविधान' कहा गया है) के अनुच्छेद 132 के तहत दिए गए एक सर्टिफ़िकेट पर आधारित है, 'एनिमी एजेंट्स ऑर्डिनेंस' (शत्रु एजेंट अध्यादेश), सन 2005 का क्रमांक VIII (जिसे आगे 'अध्यादेश' कहा गया है) की संवैधानिकता का प्रश्न उठाती है; इस अध्यादेश को महामहिम ने 'जम्मू और कश्मीर संविधान अधिनियम, S. 1996' (जिसे आगे 'संविधान-अधिनियम' कहा गया है) की धारा 5 के तहत जारी किया था। अपीलकर्ताओं ने संविधान के अनुच्छेद 132 (3) के तहत इस न्यायालय में एक आवेदन भी प्रस्तुत किया, जिसमें उन्होंने संविधान की व्याख्या से संबंधित आधारों के अतिरिक्त, हाई कोर्ट में उठाए गए अन्य आधारों पर भी बहस करने की अनुमति मांगी थी। हमने बहस की शुरुआत में ही यह सूचित कर दिया था कि इस आवेदन को स्वीकार किया जा रहा है, और अपीलकर्ताओं के विद्वान वकील को हाई कोर्ट में उठाए गए सभी बिंदुओं पर अपनी दलीलें प्रस्तुत करने की अनुमति दी गई थी।

अपीलकर्ताओं पर अध्यादेश के तहत गठित एक विशेष न्यायालय में, अध्यादेश की धारा 3, विस्फोटक पदार्थ अधिनियम (1908 का अधिनियम VI) की धाराओं 3, 4 और 5, दंड संहिता की धारा 120-B, और लोक सुरक्षा अधिनियम की धारा 29 (जिसे उसके तहत बनाए गए नियमों के नियम 28 और 32 के साथ पढ़ा जाए) के अंतर्गत आने वाले अपराधों के लिए मुकदमा चलाया जा रहा है। जिन घटनाओं के आधार पर यह मुकदमा शुरू हुआ, वे 27 और 28 जून, 1957 को घटित हुई थीं।

जिन परिस्थितियों में यह अध्यादेश पारित किया गया, वे इस प्रकार थीं: 22 अक्टूबर, 1947 को बाहरी हमलावरों ने कश्मीर पर हमला करना शुरू कर दिया। 26 अक्टूबर, 1947 को राज्य भारत में शामिल हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके तुरंत बाद, जनवरी 1948 में, 'शत्रु एजेंट अध्यादेश', संख्या XIX, संवत 2004 अधिनियमित किया गया था। 1 जनवरी, 1949 को "युद्धविराम" हो गया और हमले समाप्त हो गए। इसके बाद वर्तमान अध्यादेश आया, जो 24 जनवरी, 1949 को कानून बन गया। अध्यादेश की प्रस्तावना में कहा गया है कि बाहरी हमलावरों और राज्य के शत्रुओं द्वारा किए गए मनमाने हमलों के परिणामस्वरूप एक आपातकालीन स्थिति उत्पन्न हो गई थी; जिसके कारण शत्रु एजेंटों और उन व्यक्तियों के विचारण (trial)

तथा दंड का प्रावधान करना आवश्यक हो गया था, जिन्होंने शत्रु की सहायता करने के इरादे से कुछ अपराध किए थे। और चूंकि संवत 2004 के अध्यादेश XIX में संशोधन करना आवश्यक था, इसलिए कानून को समेकित करते हुए और पिछले अध्यादेश को निरस्त करते हुए यह अध्यादेश पारित किया गया।

हाई कोर्ट में अपीलकर्ताओं के मुख्य तर्क ये थे कि यह अध्यादेश संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने के कारण असंवैधानिक और शून्य था; कि महामहिम के पास इसे बनाने की कोई विधायी क्षमता नहीं थी; और यह कि किसी भी स्थिति में, 1951 में संविधान-अधिनियम की धारा 5 को निरस्त किए जाने के साथ ही यह समाप्त हो गया था।

हाई कोर्ट का यह मत था कि इसमें एक उचित वर्गीकरण किया गया था और यह वर्गीकरण एक ऐसे समझदारी भरे आधार पर आधारित था, जो एक समूह में रखे गए व्यक्तियों या चीज़ों को उस समूह से बाहर रखे गए व्यक्तियों या चीज़ों से अलग करता था; और इस आधार का, अध्यादेश के ज़रिए हासिल किए जाने वाले उद्देश्य के साथ एक तर्कसंगत संबंध था। इसलिए कोर्ट ने यह फ़ैसला दिया कि यह अध्यादेश अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं करता है। कोर्ट का आगे यह भी मत था कि जब महामहिम ने यह अध्यादेश जारी किया था, तब उनके पास ऐसा करने की विधायी क्षमता मौजूद थी; और जब 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन' (विलय पत्र) के ज़रिए कुछ विषय भारत सरकार को सौंप दिए गए थे, तब भी राज्य के पास उन विषयों पर भी कानून बनाने की शक्तियाँ बनी रहीं–बशर्ते कि राज्य द्वारा बनाया गया कानून, केंद्रीय विधायिका द्वारा बनाए गए किसी भी कानून के विपरीत न हो। इस प्रकार, कोर्ट ने यह माना कि भारत सरकार को हस्तांतरित किए गए विषयों पर भी कानून बनाने की समवर्ती शक्ति राज्य के पास मौजूद थी। अंत में, हाई कोर्ट ने यह फ़ैसला दिया कि 'संविधान अधिनियम' की धारा 5 को निरस्त कर दिए जाने से यह अध्यादेश समाप्त नहीं हो गया, क्योंकि 'जम्मू और कश्मीर सामान्य खंड अधिनियम' की धारा 6 ने इसे सुरक्षित रखा था। इसलिए, कोर्ट ने अपीलकर्ताओं द्वारा दायर की गई रिट याचिका को ख़ारिज कर दिया।

हमारे समक्ष अपीलकर्ताओं के मुख्य तर्क ये हैं:-

(1) यह अध्यादेश असंवैधानिक है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है।

(2) संविधान अधिनियम की धारा 5 के तहत अध्यादेश जारी करने की विधायी क्षमता महामहिम के पास नहीं थी, क्योंकि महामहिम ने 26 अक्टूबर, 1947 को 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ़

एक्सेशन' (विलय पत्र) पर हस्ताक्षर करके रक्षा, संचार और विदेश मामलों से संबंधित अपनी शक्तियाँ भारत सरकार को सौंप दी थीं, और यह अध्यादेश "रक्षा" शीर्षक के अंतर्गत आता था।

(3) संविधान अधिनियम की धारा 5 को 17 नवंबर, 1951 को पारित एक संशोधन अधिनियम, संख्या XVII (संवत 2005) द्वारा निरस्त कर दिया गया था; और इसलिए, जिस दिन धारा 5 निरस्त हुई, उसी दिन वह अध्यादेश भी समाप्त हो गया।

(4) यह अध्यादेश वैसे भी समाप्त हो चुका है, क्योंकि जिन शर्तों के तहत इसे अधिनियमित किया गया था, वे अब पुरानी हो चुकी थीं और अब उनका कोई अस्तित्व नहीं रह गया था।

(5) यह अध्यादेश शून्य था, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 352 तथा उसके बाद के अनुच्छेदों के असंगत था।

संदर्भ (1)

इस अध्यादेश की धारा 2 में "शत्रु" और "शत्रु एजेंट" को परिभाषित किया गया है। धारा 3 में यह प्रावधान है कि जो कोई भी व्यक्ति शत्रु एजेंट है, या जो शत्रु की सहायता करने के इरादे से, कोई ऐसा कार्य करता है, या करने का प्रयास करता है, या किसी अन्य व्यक्ति के साथ मिलकर ऐसा कार्य करने का षड्यंत्र रचता है–जिसका उद्देश्य शत्रु के सैन्य या हवाई अभियानों को सहायता पहुँचाना हो, या भारतीय सेनाओं, या 'हिज़ हाइनेस' (शासक) की सेनाओं, या किसी भी भारतीय रियासत की सेनाओं के सैन्य या हवाई अभियानों में बाधा डालना हो, या जिससे किसी के जीवन को खतरा उत्पन्न हो, अथवा जो आगजनी का दोषी हो–तो वह विभिन्न प्रकार के दंडों का भागी होगा। धारा 4 में यह प्रावधान है कि धारा 3 के अंतर्गत दंडनीय किसी भी अपराध का विचारण (trial) इस अध्यादेश के तहत ही किया जाएगा; और यदि धारा 3 के अंतर्गत किए गए अपराध के साथ-साथ कोई अन्य अपराध भी किया गया हो–जिसका विचारण 'दंड प्रक्रिया संहिता' (Code of Criminal Procedure) के तहत संयुक्त रूप से किया जा सकता हो–तो धारा 3 के अंतर्गत अपराध का विचारण करने वाला विशेष न्यायाधीश, उस अन्य अपराध का विचारण भी इस अध्यादेश द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही करेगा। धारा 5 में विशेष न्यायाधीशों की नियुक्ति और उनके क्षेत्राधिकार के संबंध में प्रावधान किया गया है। धारा 6 राज्य सरकार को यह शक्ति प्रदान करती है कि वह किसी मामले की कार्यवाही को एक विशेष न्यायाधीश से दूसरे विशेष न्यायाधीश को हस्तांतरित कर सके; साथ ही, इसमें उस प्रक्रिया का भी उल्लेख है जिसका पालन उस विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा जिसे कोई मामला हस्तांतरित किया गया हो। धारा 7 में यह निर्धारित किया गया है कि विशेष न्यायाधीशों द्वारा 'वारंट मामलों' (warrant cases) के विचारण हेतु निर्धारित प्रक्रिया का ही पालन किया जाएगा,

और ऐसे मामलों में 'सुपुर्दगी की कार्यवाही' (commitment proceedings) की कोई आवश्यकता नहीं होगी। यह कानून विशेष जजों को सबूत दर्ज करने, गवाहों को बुलाने और सुनवाई स्थगित करने के मामलों में भी अधिकार देता है, और विशेष जज को 'सत्र न्यायालय' माना जाता है। धारा 8 में विशेष जज द्वारा सुनाई जाने वाली सज़ाओं का प्रावधान है। धारा 9 में सरकार द्वारा नामित हाई कोर्ट के किसी जज द्वारा समीक्षा करने के अधिकार का प्रावधान है, और ऐसे जज का फैसला अंतिम माना जाता है। धारा 10 विशेष जज और समीक्षा करने वाले जज को यह अधिकार देती है कि यदि सार्वजनिक सुरक्षा या राज्य की रक्षा के हित में ऐसा करना उचित हो, तो वे सुनवाई 'बंद कमरे में' कर सकते हैं। धारा 11 में यह प्रावधान है कि इस अध्यादेश के तहत मुकदमा झेल रहे किसी आरोपी व्यक्ति का बचाव कोई वकील कर सकता है, बशर्ते विशेष जज या समीक्षा करने वाला जज इसके लिए अनुमति दे; साथ ही, यह धारा विशेष जज या समीक्षा करने वाले जज को उस आरोपी के लिए वकील नियुक्त करने का अधिकार भी देती है जिसने खुद कोई वकील नियुक्त नहीं किया है। धारा 12 में सबूतों से जुड़ा एक विशेष नियम है, जो विशेष जज को यह अधिकार देता है कि वह मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज किए गए कुछ बयानों को सबूत के तौर पर स्वीकार कर ले, यदि बयान देने वाला व्यक्ति अब जीवित न हो, या उसका पता न चल पा रहा हो, या वह सबूत देने में असमर्थ हो। धारा 13 में मुकदमे की सुनवाई के दौरान आरोपी व्यक्तियों के अड़ियल या असहयोगी रवैये से उत्पन्न होने वाली स्थितियों से निपटने के अधिकारों का प्रावधान है। धारा 14 सभी अन्य न्यायालयों से यह अधिकार छीन लेती है कि वे विशेष जज की सुनवाई या आदेशों में कोई हस्तक्षेप करें, या उनके समक्ष लंबित किसी मामले को कहीं और स्थानांतरित करें, या 'दंड प्रक्रिया संहिता' की धारा 491 के तहत कोई आदेश जारी करें। धारा 15 इस बात पर रोक लगाती है कि विशेष जज के समक्ष चल रहे किसी भी मामले के रिकॉर्ड की प्रतियां किसी अन्य व्यक्ति को न दी जाएं–सिवाय आरोपी या उसके वकील के; साथ ही, यह प्रावधान इस बात को भी दंडनीय अपराध बनाता है कि आरोपी या उसका वकील उस प्रति को किसी अन्य व्यक्ति को दिखाए, या उसके अंदर लिखी बातों को किसी अन्य व्यक्ति के सामने उजागर करे–सिवाय उस कानूनी प्रक्रिया के दौरान, जिसके लिए वह प्रति प्राप्त की गई थी। इसके अलावा, इसमें यह भी प्रावधान है कि विशेष जज के समक्ष कानूनी प्रक्रिया समाप्त होने के दस दिनों के भीतर वे प्रतियां वापस कर दी जाएं। धारा 16 में यह प्रावधान है कि इस अध्यादेश के तहत होने वाली कार्यवाहियों पर दंड प्रक्रिया संहिता या उस समय लागू किसी अन्य कानून के प्रावधान लागू होंगे, बशर्ते वे इस अध्यादेश के प्रावधानों के विपरीत न हों। धारा 17 के अनुसार, धारा 15 के तहत प्रतिबंधित जानकारी को उजागर करना दंडनीय अपराध है। धारा 18 सरकार को यह अधिकार देती है कि वह इस अध्यादेश के उद्देश्यों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए आवश्यक नियम बना

सके। धारा 19 'शत्रु एजेंट अध्यादेश, S. 2004 का XIX' को निरस्त करती है; लेकिन साथ ही यह भी प्रावधान करती है कि निरस्त किए गए उस अध्यादेश के तहत बनाए गए सभी नियम, जारी किए गए आदेश, चलाई गई अभियोजन प्रक्रियाएँ, की गई कार्रवाइयाँ और दी गई सजाएँ– इस नए अध्यादेश के तहत ही बनाई, जारी की, की और दी गई मानी जाएँगी।

अध्यादेश के प्रावधानों के इस विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाएगा कि अध्यादेश के तहत अपनाई जाने वाली प्रक्रिया, अपराधों से निपटने वाले आपराधिक न्यायालयों की सामान्य प्रक्रिया से कई महत्वपूर्ण मामलों में भिन्न है। अपीलकर्ताओं का तर्क है कि यह भेदभाव के समान है, और इसलिए यह अध्यादेश शून्य तथा असंवैधानिक है, क्योंकि यह संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करता है।

संविधान के अनुच्छेद 14 के प्रावधान कई मामलों में इस न्यायालय के समक्ष चर्चा के लिए आए हैं। अब यह अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि "हालांकि अनुच्छेद 14 वर्ग-विशेष कानून बनाने पर रोक लगाता है, लेकिन यह कानून बनाने के उद्देश्यों के लिए उचित वर्गीकरण पर रोक नहीं लगाता है। हालांकि, अनुमेय वर्गीकरण की कसौटी पर खरा उतरने के लिए दो शर्तें पूरी होनी चाहिए, अर्थात् (i) वर्गीकरण एक ऐसे बोधगम्य आधार पर आधारित होना चाहिए जो एक समूह में रखे गए व्यक्तियों या वस्तुओं को उस समूह से बाहर रखे गए दूसरों से अलग करता हो, और (ii) उस आधार का, विचाराधीन कानून द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के साथ एक तार्किक संबंध होना चाहिए। वर्गीकरण अलग-अलग आधारों पर आधारित हो सकता है, जैसे भौगोलिक, या वस्तुओं, व्यवसायों, या इसी तरह की अन्य चीज़ों के अनुसार। जो आवश्यक है वह यह है कि वर्गीकरण के आधार और विचाराधीन अधिनियम के उद्देश्य के बीच एक संबंध (nexus) होना चाहिए। इस न्यायालय के निर्णयों से यह भी अच्छी तरह से स्थापित हो चुका है कि अनुच्छेद 14 न केवल मूल कानून द्वारा, बल्कि प्रक्रियात्मक कानून द्वारा किए गए भेदभाव की भी निंदा करता है।" (देखें श्री राम कृष्ण डालमिया बनाम श्री न्यायमूर्ति एस. आर. तेंडोलकर (1))। इसलिए, हमें यह देखना होगा कि क्या इस अध्यादेश के उद्देश्यों के लिए कोई उचित वर्गीकरण किया गया है। यह अध्यादेश जनवरी 1949 में, युद्धविराम के तुरंत बाद पारित किया गया था। यद्यपि बाहरी हमलावरों और राज्य के शत्रुओं द्वारा किए गए आक्रमण समाप्त हो चुके थे, फिर भी यह महसूस किया गया कि परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि आपातकाल अभी भी जारी था; अतः शत्रु एजेंटों और उन व्यक्तियों के विचारण तथा दंड के लिए विशेष प्रक्रिया का प्रावधान करना आवश्यक था, जिन्होंने शत्रु की सहायता करने के

इरादे से कुछ अपराध किए थे–और यही विशेष प्रक्रिया इस अध्यादेश में अधिनियमित की गई थी। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, "शत्रु" को इस प्रकार परिभाषित किया गया कि इसका अर्थ और इसमें शामिल हैं: "कोई भी ऐसा व्यक्ति जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, राज्य में कानून द्वारा स्थापित सरकार को उखाड़ फेंकने के उद्देश्य से बाहरी हमलावरों द्वारा हाल ही में चलाए गए अभियान में भाग ले रहा हो या सहायता कर रहा हो।" "शत्रु एजेंट" को इस प्रकार परिभाषित किया गया कि इसका अर्थ है: "एक ऐसा व्यक्ति, जो शत्रु के सशस्त्र बल के सदस्य के रूप में कार्य नहीं कर रहा हो, लेकिन जिसे शत्रु द्वारा नियोजित किया गया हो, या जो शत्रु के लिए कार्य करता हो, अथवा शत्रु से प्राप्त निर्देशों के अनुसार कार्य करता हो।" इसलिए, यह स्पष्ट है कि "शत्रु" और "शत्रु एजेंट" व्यक्तियों का एक स्पष्ट रूप से परिभाषित वर्ग हैं, और अध्यादेश के उद्देश्य के लिए एक उचित वर्गीकरण का आधार बनेंगे। धारा 3 में ऐसे व्यक्ति को दंडित करने का प्रावधान है जो शत्रु एजेंट है, या जो शत्रु की सहायता करने के इरादे से कुछ कार्य करता है। उस समय और अब राज्य में मौजूद परिस्थितियों को देखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि यह वर्गीकरण उचित है और एक ऐसे बोधगम्य अंतर पर आधारित है, जो अध्यादेश के दायरे में लाए गए व्यक्तियों को दूसरों से अलग करता है। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि इस अंतर का, अध्यादेश द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के साथ एक तार्किक संबंध था। हाल ही में राज्य में कानून द्वारा स्थापित सरकार को उखाड़ फेंकने के लिए एक अभियान चलाया गया था; और यद्यपि वास्तविक छापे समाप्त हो चुके थे, फिर भी सरकार को उखाड़ फेंकने का खतरा टला नहीं था, और शत्रु की सहायता करने का इरादा रखने वाले लोगों से खतरा बना हुआ था। इन परिस्थितियों में, यह अध्यादेश अधिनियमित किया गया था, और इसमें शत्रु एजेंटों–या उन लोगों–के विचारण (trial) के लिए एक विशेष प्रक्रिया का प्रावधान किया गया था, जिन्होंने शत्रु की सहायता करने के इरादे से कुछ कार्य किए थे; ऐसे व्यक्तियों का उद्देश्य राज्य में कानून द्वारा स्थापित सरकार को उखाड़ फेंकना था। अगर यह कहा जाए कि इस अध्यादेश का मकसद लोगों का कोई वर्गीकरण करना बिल्कुल नहीं है, बल्कि यह सिर्फ़ एक अपराध तय करता है और उस अपराध की सज़ा के लिए एक सख़्त प्रक्रिया का प्रावधान करता है, तो इसमें कोई भेदभाव बिल्कुल नहीं है; क्योंकि जो भी व्यक्ति वह अपराध करता है, उसे उसी सख़्त प्रक्रिया से गुज़रना पड़ता है। यह भी याद रखना ज़रूरी है कि भेदभाव के आरोप को खारिज करने के लिए, जो वर्गीकरण किया जाता है, वह ज़रूरी नहीं कि सिर्फ़ लोगों का ही हो। कुछ अपराध इतने जघन्य या गंभीर हो सकते हैं कि

कुछ खास परिस्थितियों में उन्हें एक अलग श्रेणी में रखा जा सकता है और उन पर अलग तरीके से मुक़दमा चलाया जा सकता है। इस अध्यादेश की धारा 3 के तहत जो अपराध तय किया गया है, वह दंड संहिता में उस रूप में मौजूद नहीं है; बल्कि यह एक नए और ज़्यादा गंभीर किस्म का अपराध है। ऊपर बताए गए राज्य में मौजूदा परिस्थितियों को देखते हुए, इसे आम अपराधों से अलग माना जा सकता है और इस पर एक सख़्त प्रक्रिया के तहत कार्रवाई की जा सकती है, बिना इस आरोप का सामना किए कि इससे 'समान सुरक्षा खंड' का उल्लंघन हुआ है। इसलिए, हमारी राय है कि 'डालमिया केस' ([1]) में संक्षेप में बताए गए कई मामलों में इस न्यायालय द्वारा तय किए गए सिद्धांतों के आधार पर, इस अध्यादेश को भेदभावपूर्ण नहीं कहा जा सकता और इसलिए, इसे संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला भी नहीं माना जा सकता। इसलिए, इस अध्यादेश की संवैधानिकता को लेकर इस मद के तहत दी गई दलील को खारिज किया जाना चाहिए।

संदर्भ (2)

इस अध्यादेश को संविधान अधिनियम की धारा 5 के तहत जारी किया गया बताया गया है। इस धारा में यह घोषित किया गया था कि राज्य और उसकी सरकार से संबंधित सभी शक्तियाँ–विधायी, कार्यकारी और न्यायिक–सदैव 'हिज़ हाइनेस' (शासक) में निहित थीं, और उन्हीं के द्वारा धारण व संरक्षित की जाती थीं। साथ ही, अधिनियम में ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे हिज़ हाइनेस के उन अधिकारों और विशेषाधिकारों पर कोई प्रभाव पड़े–या ऐसा माना जाए कि कोई प्रभाव पड़ा है–जिनके तहत वे अपनी अंतर्निहित सत्ता के बल पर कानून बना सकते थे, तथा उद्घोषणाएँ, आदेश और अध्यादेश जारी कर सकते थे। तथापि, यह निवेदन किया जाता है कि 26 अक्टूबर, 1947 को राज्य के भारत में विलय (Accession) हो जाने के कारण, कुछ विशिष्ट विषय भारत सरकार को सौंप दिए गए थे; अतः, हिज़ हाइनेस के पास उन सौंपे गए विषयों पर कानून बनाने की कोई शक्ति शेष नहीं रह गई थी। ये विषय 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन' (विलय-पत्र) (2) की अनुसूची में सूचीबद्ध हैं। इस अनुसूची में कुल 20 मदें (items) शामिल हैं, जिन्हें

चार शीर्षकों के अंतर्गत समूहीकृत किया गया है: **(ए)** रक्षा, **(बी)** विदेश मामले, **(सी)** संचार, और **(डी)** आनुषंगिक विषय। यहाँ हमारा सरोकार शीर्षकों **(बी)** और **(सी)** से नहीं है; हमें केवल शीर्षकों **(ए)** और **(डी)** के अंतर्गत आने वाली मदों पर ही विचार करना है। "रक्षा" शीर्षक के अंतर्गत चार मदें शामिल हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. डोमिनियन की नौसेना, थलसेना और वायुसेना, तथा डोमिनियन द्वारा गठित या अनुरक्षित कोई अन्य सशस्त्र बल; और कोई भी सशस्त्र बल–जिसमें किसी शामिल होने वाले राज्य द्वारा गठित या अनुरक्षित बल भी शामिल हैं–जो डोमिनियन के किसी भी सशस्त्र बल से संबद्ध हैं, या उनके साथ मिलकर कार्य कर रहे हैं।
2. नौसेना, सेना और वायुसेना के कार्य, छावनी क्षेत्रों का प्रशासन।
3. हथियार, आग्नेयास्त्र, गोला-बारूद।
4. विस्फोटक

और "सहायक" (Ancillary) शीर्षक के अंतर्गत चार मदें हैं, जो इस प्रकार हैं----

1. डोमिनियन विधानमंडल के चुनाव, अधिनियम और उसके अधीन किए गए किसी भी आदेश के प्रावधानों के अधीन होंगे।
2. उपर्युक्त विषयों में से किसी के संबंध में विधियों के विरुद्ध अपराध।
3. उपर्युक्त मामलों में से किसी के प्रयोजनों के लिए जांच और सांख्यिकी।
4. ऊपर बताए गए किसी भी मामले के संबंध में सभी अदालतों का क्षेत्राधिकार और शक्तियाँ; लेकिन, शामिल होने वाले राज्य के शासक की सहमति के बिना, ऐसा कोई क्षेत्राधिकार या शक्ति किसी ऐसी अदालत को नहीं दी जाएगी जो आम तौर पर उस राज्य में या उसके संबंध में क्षेत्राधिकार का प्रयोग नहीं करती है।

अपीलकर्ताओं की ओर से यह तर्क दिया गया है कि अध्यादेश के प्रावधान विशेष रूप से "रक्षा" शीर्षक के अंतर्गत आने वाली मद (1) के दायरे में आते थे। यह भी ज़ोर देकर कहा गया है कि उच्च न्यायालय का यह निर्णय सही नहीं था कि अनुसूची में दी गई मदों के संबंध में भी राज्य और केंद्रीय विधानमंडल, दोनों के पास समवर्ती क्षेत्राधिकार था; और यह कि 'अधिमिलन पत्र' (Instrument of Accession) की सही व्याख्या के अनुसार, अनुसूची में वर्णित विषयों पर कानून बनाने की शक्ति केवल केंद्रीय विधानमंडल के पास ही थी। हम इस मामले में यह तय

करना आवश्यक नहीं समझते कि अनुसूची के अंतर्गत आने वाले विषयों पर कानून बनाने की समवर्ती शक्तियाँ राज्य के पास थीं या नहीं; और हम इस धारणा के आधार पर आगे बढ़ेंगे कि इन विषयों पर कानून बनाने की शक्ति केवल केंद्रीय विधानमंडल के पास ही थी। तब जो प्रश्न तत्काल उठता है, वह यह है कि क्या यह अध्यादेश "रक्षा" हेड के अंतर्गत आने वाली मद (1) के दायरे में आता है। "रक्षा" हेड के अंतर्गत या "आनुषंगिक" (Ancillary) हेड के अंतर्गत आने वाली अन्य मदें, इस प्रयोजन के लिए अप्रासंगिक हैं। यदि यह अध्यादेश "रक्षा" हेड के अंतर्गत आने वाली मद (I) के दायरे में नहीं आता है, तो इसे प्रख्यापित करने का अधिकार राज्य विधानमंडल या महामहिम के पास होगा; क्योंकि अनुसूची में शामिल बीस मदों के अलावा अन्य सभी मामले, किसी भी स्थिति में, राज्य के पास ही रहते हैं। "रक्षा" हेड के अंतर्गत आने वाली मद (I) का संबंध डोमिनियन की नौसेना, थल सेना और वायु सेना से है, तथा इसमें डोमिनियन द्वारा गठित या अनुरक्षित कोई भी अन्य सशस्त्र बल शामिल हैं; इसके अतिरिक्त, इसमें वे सभी सशस्त्र बल भी शामिल हैं–चाहे वे किसी भी अधिमिलित राज्य द्वारा गठित या अनुरक्षित हों–जो डोमिनियन के किसी भी सशस्त्र बल से संबद्ध हैं अथवा उनके साथ मिलकर कार्य कर रहे हैं। इस प्रविष्टि की व्याख्या चाहे कितनी भी व्यापक क्यों न की जाए, यह स्पष्ट है कि इसका संबंध केवल सशस्त्र बलों से है–चाहे वे थल पर हों, जल में हों या वायु में–तथा ऐसे बलों के गठन, उनके रखरखाव और उनकी संक्रियाओं से है। हमारी राय में, इस अध्यादेश का उन मामलों से कोई लेना-देना नहीं है जो इस प्रविष्टि के अंतर्गत आते हैं। यह सत्य है कि यह अध्यादेश "शत्रु" और "शत्रु-अभिकर्ता" को परिभाषित करता है, तथा शत्रु की सहायता करने के इरादे से किए गए कुछ विशिष्ट कृत्यों को अपराध घोषित करता है; इन कृत्यों में शत्रु की सैन्य अथवा वायु संक्रियाओं में सहायता पहुँचाना, अथवा भारतीय सेनाओं, महामहिम की सेनाओं, या किसी भी भारतीय रियासत की सेनाओं की सैन्य अथवा वायु संक्रियाओं में बाधा डालना शामिल है। लेकिन इसका सशस्त्र बलों के ऑपरेशन्स से सिर्फ़ परोक्ष रूप से ही संबंध है, और इसका मुख्य उद्देश्य उन लोगों से निपटना है जो दुश्मन की मदद करने के इरादे से कुछ ऐसे काम करते हैं–जिनमें दुश्मन के सैन्य या हवाई ऑपरेशन्स में मदद करना, या भारतीय सशस्त्र बलों के सैन्य या हवाई ऑपरेशन्स में रुकावट डालना शामिल है। सैन्य या हवाई ऑपरेशन्स के इस ज़िक्र के अलावा, इस एक्ट के बाकी प्रावधानों का सशस्त्र बलों से कोई लेना-देना नहीं है; और अगर कोई इस अध्यादेश के मूल तत्व (pith and substance) को देखे, तो उसे पता चलेगा कि यह उन लोगों से निपटता है जो दुश्मन के एजेंट बनकर, या दुश्मन की मदद करने के इरादे से कुछ काम करके, कानून द्वारा स्थापित सरकार को उखाड़ फेंकने की कोशिशों में

शामिल होते हैं। इसलिए, अपने मूल तत्व में, यह अध्यादेश सार्वजनिक व्यवस्था और आपराधिक कानून व प्रक्रिया से संबंधित है; सिर्फ़ इस बात से कि अध्यादेश की धारा 3 का सशस्त्र बलों पर परोक्ष प्रभाव पड़ता है, यह अपने मूल तत्व में, अनुसूची के तहत "रक्षा" (Defence) हेड

के अंतर्गत आने वाली मद (1) के दायरे में आने वाला कानून नहीं बन जाता। इसलिए हमारी राय है कि इस तर्क में कोई दम नहीं है कि यह अध्यादेश 'हिज़ हाइनेस' (शासक) की विधायी क्षमता से बाहर था–क्योंकि 26 अक्टूबर, 1947 के 'इंस्ट्रूमेंट ऑफ़ एक्सेशन' (विलय पत्र) के ज़रिए कुछ मामले भारत सरकार को सौंप दिए गए थे। यह तर्क भी मान्य नहीं माना जाएगा।

संदर्भ (3)

तर्क यह है कि चूंकि संविधान अधिनियम की धारा 5 को 17 नवंबर, 1951 को निरस्त कर दिया गया था, इसलिए वह अध्यादेश भी समाप्त हो गया, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसे उस धारा के तहत पारित किया गया था। यह कहना ही काफी है कि इस तर्क में कोई दम नहीं है। जम्मू और कश्मीर सामान्य खंड अधिनियम (जे.के.XX/सन 1977) की धारा 6 का खंड (बी) उस अध्यादेश को स्पष्ट रूप से सुरक्षित रखता है। यह इस प्रकार है:----

> "जहाँ यह अधिनियम, या इस अधिनियम के प्रारंभ होने के बाद बनाया गया कोई भी अधिनियम, अब तक बनाए गए या इसके बाद बनाए जाने वाले किसी भी अधिनियम को निरस्त करता है, तो, जब तक कोई भिन्न आशय प्रतीत न हो, वह निरसन ....
> **(बी)** इस प्रकार निरस्त किए गए किसी भी अधिनियम के पिछले प्रभाव को, या उसके अधीन विधिवत किए गए या भोगे गए किसी भी कार्य को प्रभावित नहीं करेगा;"

यह स्पष्ट होगा कि अध्यादेश का प्रख्यापन, संविधान अधिनियम की धारा 5 के तहत "विधिवत किया गया कार्य" था, और इस प्रकार संविधान अधिनियम की धारा 5 के निरसन से, उसके तहत प्रख्यापित अध्यादेश पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। धारा 5 के निरसन का अर्थ केवल यह हो सकता है कि निरसन की तिथि से, उस विधायी शक्ति को वापस ले लिया गया है। जब तक वह शक्ति विद्यमान थी, उस दौरान किए गए किसी भी कार्य पर ऐसे निरसन का कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। संविधान अधिनियम के तहत बनाया गया कोई भी कानून अपनी वैधता नहीं खोता है, और वह तब तक लागू रहेगा, भले ही संविधान अधिनियम के कुछ हिस्सों का निरसन हो गया हो–जिसके तहत वह कानून बनाया गया था–जब तक कि वह कानून, संविधान अधिनियम के उस संशोधित रूप के साथ असंगत न हो, जो कुछ प्रावधानों के संशोधन और

निरसन के बाद सामने आता है। इस कानून को बाध्यकारी शक्ति इस तथ्य से प्राप्त होती है कि जब इसे पारित किया गया था, तब यह विधायिका की अधिकार-सीमा के भीतर था; और चूंकि यह एक स्थायी कानून है, इसलिए यह तब तक लागू रहेगा, जब तक कि संशोधित संविधान अधिनियम के तहत इसमें संशोधन या इसका निरसन न कर दिया जाए। अतः, हमारी यह राय है कि संविधान अधिनियम की धारा 5 के निरसन के कारण वह अध्यादेश समाप्त नहीं हुआ, बल्कि जम्मू और कश्मीर साधारण खंड अधिनियम की धारा 6 (बी) के आलोक में, वह एक वैध कानून के रूप में बना रहा।

संदर्भ (4)

यह तर्क दिया गया है कि 1949 के बाद से राज्य में हालात काफी बदल गए हैं, और इसलिए यह माना जाना चाहिए कि यह अध्यादेश अब समाप्त हो चुका है। इतना कहना ही काफी है कि इस तर्क में कोई दम नहीं है–भले ही हम यह मान भी लें कि राज्य के हालात अब ठीक वैसे नहीं हैं जैसे 1949 में थे। यह अध्यादेश एक स्थायी कानून था। यह सच है कि इसे एक आपातकालीन स्थिति के कारण लागू किया गया था, लेकिन वह तो बस इस अध्यादेश को पारित करने का एक तात्कालिक कारण मात्र था। असल में, यह अध्यादेश एक ऐसी गहरी जड़ वाली बुराई को खत्म करने का प्रयास करता है–एक ऐसी बुराई जिसे यह नहीं कहा जा सकता कि अब उसका अस्तित्व समाप्त हो गया है–और वह बुराई है: राज्य के दुश्मनों के साथ मिलकर, कानून द्वारा स्थापित सरकार को उखाड़ फेंकने का प्रयास करना। एक स्थायी कानून होने के नाते, इसे केवल किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा रद्द किए जाने पर ही समाप्त किया जा सकता है। अपीलकर्ताओं का यह दावा नहीं है कि इस अध्यादेश को किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा रद्द कर दिया गया है। इसलिए, जब तक इसे रद्द नहीं कर दिया जाता, तब तक इसे प्रभावी ही माना जाएगा–भले ही हम यह मान लें कि राज्य के हालात अब ठीक वैसे नहीं हैं जैसे 1949 में थे। अतः, यह तर्क भी मान्य नहीं है।

संदर्भ (5)

यह तर्क दिया गया है कि यह अध्यादेश असंवैधानिक था, क्योंकि यह अनुच्छेद 352 और उसके बाद के अनुच्छेदों के अनुरूप नहीं है। हमें यह कहना होगा कि अनुच्छेद 352 और संविधान के भाग XVIII में आपातकालीन प्रावधानों से संबंधित बाद के अनुच्छेदों का, इस अध्यादेश की वैधता या अन्यथा से कोई लेना-देना नहीं है। हम यह समझने में असमर्थ रहे हैं कि इस

अध्यादेश और संविधान के भाग XVIII में निहित प्रावधानों के बीच कोई असंगति कैसे हो सकती है। यह तर्क भी विफल हो जाता है।

अब तीन ऐसे बिंदुओं पर ध्यान देना बाकी है, जिन्हें अपीलकर्ताओं की ओर से बहस के दौरान उठाया गया था, वे हैं: **(i)** अध्यादेश की धारा 4 (1) संविधान के अनुच्छेद 20 (1) के विरुद्ध है, **(ii)** धारा 11 (1) संविधान के अनुच्छेद 22 (1) के विरुद्ध है, और **(iii)** 'विशेष न्यायाधीश' के पास विस्फोटक पदार्थ अधिनियम के तहत किसी अपराध का विचारण करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है। इस तथ्य के अलावा कि अपीलकर्ताओं ने अपनी रिट याचिका में इन बिंदुओं को नहीं उठाया था और न ही उच्च न्यायालय के समक्ष इन पर ज़ोर दिया था–जिसके चलते हम उन्हें इस न्यायालय में पहली बार इन बिंदुओं को उठाने की अनुमति देने में संकोच करेंगे–हम प्रसंगवश यह भी इंगित कर सकते हैं कि जिन अपराधों के लिए अपीलकर्ताओं पर मुकदमा चलाया जा रहा है, वे कथित तौर पर जून 1957 में हुए थे और उन्हें अपनी पसंद के वकील रखने की अनुमति दी गई है। इसलिए, जहाँ तक पहले दो बिंदुओं का संबंध है, अपीलकर्ताओं को कोई शिकायत नहीं हो सकती; अतः हम इन बिंदुओं का निर्णय ऐसे किसी मामले के लिए छोड़ देते हैं, जहाँ वास्तव में कोई शिकायत मौजूद हो। तीसरे बिंदु में कोई सार नहीं है।

अतः, इस अपील में कोई बल नहीं है और इसे एतद्द्वारा खारिज की जाती है।

अपील खारिज की गई।

यह अनुवाद सुश्री लीना मुखर्जी, पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।